Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

मारवाड़ के अभिलेखों में प्रशासनिक व्यवस्था

डॉ. रेखा गुप्ता
सीनियर रिसर्च फेलो (आई.सी.एस.एस.आर)
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत ।

Article Info
Volume 5, Issue 3
Page Number : 30-36

Publication Issue :
May-June-2022

Article History
Accepted : 15 May 2022
Published : 30 May 2022

शोध सारांश – मारवाड़ राजस्थान के पश्चिम में स्थित ऐसा क्षेत्र है जिसका उल्लेख आदि काव्य रामायण, महाभारत व पुराणों में भी प्राप्त होता है। वर्तमान में मारवाड़ क्षेत्र के अंतर्गत जोधपुर, बाड़मेर, पाली, जालौर, नागौर व इसके आसपास के क्षेत्र सम्मिलित हैं। मारवाड़ में प्रारंभ से ही राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था प्रचलित रही है और यहां के प्राय: सभी शासकों ने शिलालेखों को उत्कीर्ण करवाया है। मारवाड़ में द्वितीय शताब्दी से लेकर पंद्रहवी-सोलहवीं सदी तक के शिलालेख प्राप्त होते हैं जिनमें प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है। इन शिलालेखों से कई प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध होती है। विशेष रुप से इन शिलालेखों में विभिन्न राजवंशों की उत्पत्ति, राजाओं के वंश वृक्ष, उनकी राजनैतिक व प्रशासनिक स्थिति, भौगोलिक सीमा इत्यादि के विषय में ज्ञान होता है। प्रस्तुत आलेख में अभिलेखों के आधार पर राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए उन महत्वपूर्ण पदनाम, अधिकारियों व संस्थाओं का उल्लेख किया जाएगा जो प्राय: प्रत्येक काल में सामान्य रूप से प्रशासन के अंग थे।

मुख्य शब्द – राजस्थान, मारवाड़, जोधपुर, शिलालेख, प्रशासनिक व्यवस्था ।

वीर भूमि राजस्थान प्रदेश का मारवाड़ क्षेत्र राजस्थान के इतिहास में विशिष्ट व महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मारवाड़ राजस्थान के पश्चिम में स्थित ऐसा क्षेत्र है जिसका उल्लेख आदिकाव्य रामायण, महाभारत व पुराणों में भी प्राप्त होता है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब राम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए आग्नेयास्त्र का अनुसंधान किया तब समुद्र ने विनती कर उस अस्त्र को द्रुमकुल्य नामक स्थान के उत्तरी भाग पर चलाने की प्रार्थना की । तब राम ने उस अस्त्र को द्रुमकुल्य पर छोड़ दिया जिससे उस स्थान का सम्पूर्ण जल सूख गया और वहाँ मरू प्रदेश की उत्पत्ति हुई।[1] इसके अतिरिक्त मारवाड़ के पश्चिम क्षेत्र में अर्द्ध पाषाण रूप में शंख व सीपियों के मिलने से भी पूर्व काल में यहां समुद्र का होना सिद्ध होता है तथा प्राकृतिक कारणों से उस समुद्र के सूख जाने से वहां रेतीली भूमि रह गई है । महाभारत काल में मारवाड़ क्षेत्र के जोधपुर, बीकानेर व आसपास के क्षेत्रों के लिए 'जांगल' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[2] बीकानेर के राजा इसी कारण से स्वयं को 'जांगलधर बादशाह' कहते थे। भागवत पुराण के अनुसार जरासंध के आक्रमण से बचने के लिए श्रीकृष्ण ने यदुवंशियों को मारवाड़ के रास्ते से ही मथुरा से गुजरात की तरफ भेजा था ।[3]

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कालांतर में जोधपुर राज्य को मरू, मरुवार और बाद में मारवाड़ कहा जाने लगा। वर्तमान में मारवाड़ क्षेत्र के अंतर्गत जोधपुर, बाड़मेर, पाली, जालौर, नागौर व इसके आसपास के क्षेत्र सम्मिलित हैं। मारवाड़ में प्रारंभ से ही राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था प्रचलित रही है और यहां के प्राय: सभी शासकों ने शिलालेखों को उत्कीर्ण करवाया है। मारवाड़ में द्वितीय शताब्दी से लेकर पंद्रहवी–सोलहवीं सदी तक के शिलालेख प्राप्त होते हैं जिनमें प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है। इन शिलालेखों से कई प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध होती है । विशेष रुप से इन शिलालेखों में विभिन्न राजवंशों की उत्पत्ति, राजाओं के वंश वृक्ष, उनकी राजनैतिक व प्रशासनिक स्थिति, भौगोलिक सीमा इत्यादि के विषय में ज्ञान होता है। प्रस्तुत आलेख में अभिलेखों के आधार पर राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए उन महत्वपूर्ण पदनाम, अधिकारियों व संस्थाओं का उल्लेख किया जाएगा जो प्राय: प्रत्येक काल में सामान्य रूप से प्रशासन के अंग थे।

राजा - भारतीय अर्थशास्त्रीय परंपरा में सप्तांग राज्य का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है – स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, दंड एवं मित्र ।[4] इन सप्तांगों में स्वामी अर्थात राजा का स्थान सर्वप्रथम व सर्वोच्च कहा गया है । कौटिल्य ने तो राजा को ही संक्षिप्त राज्य कहा है।[5] राजस्थान प्राचीन काल से ही अनेक रियासतों में विभाजित था तथा प्रत्येक रियासत का अपना एक राजा होता था जो राज्य का सर्वेसर्वा होता था । राजस्थान में विभिन्न राजवंशों के शासकों को उनके सामंतों के द्वारा परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों से सम्मानित किया जाता रहा है । प्रतिहार शासक नागभट्ट को उनके सामंतों के द्वारा परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि प्रदान की गई तथा वत्सराज को महाराजाधिराज और परमेश्वर कह कर सम्मानित किया गया।[6] इसी प्रकार चालुक्य वंश के शासक कुमारपाल को भी उनके सामंतों के द्वारा परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विरुद दिया गया।[7] इस प्रकार सामंतो द्वारा अपने शासकों को उपाधि प्रदान किए जाने के पीछे देश व संस्कृति की रक्षा तथा राजाओं के देवत्व की अवधारणा द्वारा अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने की भावनाएं प्रतीत होती है ।

शिलालेखों के आधार पर शासकों के उन आदर्श गुणों का भी ज्ञान होता है, जिन आदर्श गुणों की चर्चा अनेक प्राचीन ग्रंथों में की गई है । वैदिक साहित्य के अनुसार राजा को प्रजापालक, प्रजावत्सल, प्रजासंरक्षक व धर्माचरण करने वाला होना चाहिए ।[8] वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा अक्रोधी, पराक्रमी, सभी प्राणियों का हित चाहने वाला होना चाहिए। प्रजा की रक्षा तथा प्रजा पालन राजा का परम कर्तव्य है ।[9] महाभारत में भी प्रजा पालन राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य कहा गया है। प्रजा पालन करते हुए राजा को प्रजा को भी धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त करना चाहिए।[10] घटियाला, जोधपुर से प्राप्त 861 ई. के शिलालेख में प्रतिहार शासक कक्कुक को न्यायप्रिय, लोक कल्याण हेतु कार्य करने वाला, वीरता का सम्मान करने वाला, साहसी शासक कहा गया है ।[11] वि.सं. 1218 के कीर्तिपाल के नाडोल से प्राप्त ताम्रपत्र में वहां के शासक आल्हण को पवित्र, सदाचारी तथा दान का निकेतन कहा गया है । इसी अभिलेख में उसके पुत्रों को श्रेष्ठ, बुद्धिमान, रूपवान, शास्त्रज्ञानी, वीर व दानी बताया गया है ।[12] इस प्रकार राजस्थान के शासक धर्म परायण तथा उदारवादी दृष्टिकोण के स्वामी थे ।

युवराज – प्रशासनिक दृष्टि से राजा के पश्चात युवराज का स्थान महत्वपूर्ण होता था । युवराज युद्ध और शांति के समय राज्य की सहायता करता था । राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में प्राय: राजा का पद आनुवंशिक होता था और सामान्यतया ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी अथवा युवराज घोषित किया जाता था किंतु अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कभी–कभी ज्येष्ठ पुत्र के स्थान पर छोटे भाई को भी युवराज बना दिया जाता था । प्रतिहार राजा बाउक के

पश्चात उसके छोटे भाई कक्कुक को ही शासक बनाया गया था ।[13] मंडोर शिलालेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहार तात ने अपने छोटे भाई भोज को राज्य दे दिया था ।[14]

सामंत- तत्कालीन राजनीति में सामंतों की महती भूमिका का भी ज्ञान होता है । राजा को अपने विभिन्न निर्णयों में साम, दान, दंड, भेद द्वारा सामंतों की सहायता लेनी पड़ती थी । सामंतो के साथ-साथ सामंत परिवार की स्त्रियों की स्थिति भी महत्वपूर्ण थी। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि सामंत परिवार की स्त्रियाँ भी लोककल्याण के लिए बावड़ियों का निर्माण तथा मंदिरों में विभिन्न प्रकार के दान करवाती रहती थी ।[15]

महादेवी- मारवाड़ क्षेत्र में प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राज्य में महादेवी या महारानी का पद भी महत्वपूर्ण व सम्मानजनक होता था । अंत:पुर की प्रमुख रानी को महारानी का स्थान प्राप्त होता था तथा अन्य सभी रानियों से अधिक सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी । बाउक के जोधपुर से प्राप्त वि.सं. 894 के अभिलेख में भाटी वंश की महारानी पद्मिनी का उल्लेख हुआ है । महारानी होने के नाते इन्हें कुछ आर्थिक अधिकार भी प्राप्त थे । केलहण देव की रानी जाल्हण देवी ने अनेक जैन मंदिरों को अनुदान दिया था । जालौर से प्राप्त वि.सं. 1174 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि परमार वीसल की रानी मैहर देवी द्वारा एक मंदिर में स्वर्ण कलश चढ़ाया गया था । शिलालेखों में रानियों के नाम अधिकतर दान और अनुदान के विषय में प्राप्त होते हैं । कभी-कभी पति की अल्पायु में मृत्यु हो जाने पर यदि पुत्र की आयु कम होती थी तो महारानी राजकार्य का संचालन भी करती थी तथा महत्वपूर्ण विषयों पर सलाह भी दिया करती थी ।[16]

महामंत्री अथवा प्रधानमंत्री- राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में महामंत्री या प्रधानमंत्री का पद महत्वपूर्ण व वंशानुगत होता था । महामंत्री का सम्मान राज्य के सभी मंत्रियों, सामंतों यहां तक कि स्वयं राजा के द्वारा भी किया जाता था । महामंत्री का प्रमुख कार्य अन्य मंत्रियों तथा विभागों पर नियंत्रण रखना और उनका कुशलता पूर्वक संचालन करना होता था । महामंत्री राजकीय मुद्रा का प्रयोग करता था तथा राजस्व विभाग इन्हीं के अधीन होता था ।[17]

सान्धिविग्राहिक - राज्य की विदेश नीति का संचालन करने हेतु वर्तमान विदेश मंत्री की भांति सान्धिविग्राहिक होता था । अन्य राज्यों के साथ सभी प्रकार के पत्र व्यवहार करना इसका प्रमुख कार्य था । यह कई प्रकार की भाषा व लिपियों का ज्ञाता तथा कुशल लेखक होता था ।[18] यह शांति व युद्ध का मंत्री होता था । वि.सं. 1209 के किराडू अभिलेख का रचयिता सान्धिविग्राहिक ठाकुर खेलादित्य था । महिपाल के राज्य काल में सान्धिविग्राहिक के द्वारा ही दानपत्र तैयार किये जाते थे ।[19]

अक्षपटलिक - आय-व्यय का पूर्ण विवरण रखने वाला तथा राज्य का सर्वोच्च लेखाधिकारी अक्षपटलिक होता था । इसे राज्य के समस्त आय-व्यय, उपज व विभिन्न अनुदानों की संपूर्ण जानकारी होती थी, यहां तक कि राजा द्वारा स्वेच्छा से किए गए व्यय का ब्यौरा भी इसके द्वारा लिख दिया जाता था ।[20] यह पद वंशानुगत होता था तथा कभी-कभी इस पद पर दो व्यक्तियों की भी नियुक्ति कर दी जाती थी । मेवाड़ के शासक अल्लट के मयूर तथा समुद्र नाम के दो अक्षपटलिक थे । मयूर का पुत्र श्रीपति इसी वंश के नरवाहन के शासन काल में तथा श्रीपति का पुत्र मत्तट शक्ति कुमार के समय इस पद पर नियुक्त किए गए थे ।[21]

भांडागारिक - राजकीय कोष तथा आभूषणों की सुरक्षा का दायित्व भांडागारिक नामक पदाधिकारी का होता था । यह पद भी वंशानुगत होता था । भांडागारिक की तुलना कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित सन्निधाताओं से की जा सकती है ।[22]

महाप्रतिहार- राज्यसभा में अनुशासन बनाए रखने वाला पदाधिकारी महाप्रतिहार कहलाता था । यह पद भी महत्वपूर्ण होता था तथा बड़े-बड़े सामंत भी इस पद को पाने के इच्छुक रहते थे । यह राजा के अत्यधिक निकटस्थ होता था । वसंतगढ़ से प्राप्त वि.सं. 682 के अभिलेख में महाप्रतिहार मोटक का उल्लेख किया गया है ।[23]

महादंडनायक अथवा सेनापति- पूर्व मध्यकाल में सेना का प्रमुख नायक महादंडनायक कह लाता था जो कि राजा के साथ सैन्य संबंधी विषयों पर मंत्रणा किया करता था । सैन्य प्रशासन के संचालन हेतु एक विभाग होता था जिसे बलाधिकरण कहा जाता था । राजा और सेनापति दोनों के ही निर्देशन में यह विभाग चलता था तथा दुस्साधनिक (अश्वपति) व बलाधिप (कस्बों के सेनाधिकारी) सीधे सेनापति के अधीन कार्य करते थे । पाली से प्राप्त अभिलेख में चौथी पंक्ति में बलाधिप का उल्लेख किया गया है जो कि निष्पक्ष कार्यकर्ता था । इसमें सेनापति की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है ।[24]

धर्मस्थ तथा महापुरोहित- न्यायिक कार्यों हेतु न्याय विभाग का उच्चाधिकारी धर्मस्थ होता था । वह राजा को न्यायिक परामर्श प्रदान करता था ताकि प्रजाजनों के साथ कोई अन्याय ना हो । धार्मिक मामलों के लिए महापुरोहित होता था जो धार्मिक कार्यों का संपादन करता था ।[25] इन सबके अतिरिक्त अन्य अनेक पदाधिकारी होते थे । सारणेश्वर प्रशस्ति में भिषगाधिराज रुद्रादित्य तथा नाग नामक बंदीपुत्र का उल्लेख हुआ है ।[26]

राजस्व व्यवस्था- राजस्थान के अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में आय के तीन प्रमुख परंपरागत स्रोत थे- भाग, शुल्क एवं दंड । भाग को उद्रंग भी कहा जाता था । यह एक प्रकार का भूमिकर था । उपज का 1/6 भाग कर के रूप में लिया जाता था । मनुस्मृति में भी आय का 1/6 भाग कर के रूप में लेना न्याय पूर्ण माना गया है । मनुस्मृति के अनुसार जोंक, भ्रमर व बछड़ा जिस प्रकार धीरे-धीरे अपनी आवश्यकतानुसार अपना भोजन अल्प मात्रा में ग्रहण करते हैं उसी प्रकार राजा को भी प्रजा को कष्ट दिए बिना धर्मार्थ कर ग्रहण करना चाहिए ।[27]

फलोदी अभिलेख में पृथ्वीराज चाहमान तृतीय के द्वारा उपज का 1/5 भाग कर के रूप में लिए जाने का उल्लेख है ।[28] हो सकता है कि उस समय भी भूमि के आकार-प्रकार तथा उपज के आधार पर ही भाग अर्थात कर की मात्रा निश्चित की जाती हो । यह कर उन्हीं किसानो से लिया जाता था जिनका भूमि पर वंशानुगत अधिकार हो । यह कर फसल या उपज के रूप में ही लिया जाता था जबकि मुद्रा के रूप में कृषकों से लिया जाने वाला कर हिरण्य कहलाता था ।[29] भूमि कर से संबंधित एक अन्य कर भी लिया जाता था जिसे भोग कहा जाता था । इसमें उपज के साथ-साथ फल, फूल, सब्जी, दूध, दही आदि वस्तुएं कर के रूप में दी जाती थी । उदाहरणार्थ सांडेराव से प्राप्त एक अभिलेख में उल्लेखित है कि श्री कल्हणदेव की माता ने महावीर देव के चैत्र बदी तेरस को होने वाले कल्याण महोत्सव के निमित्त राजकीय भोग (भूमि से प्राप्त राज्य का भाग अन्न के रूप में) में से एक हाएल (1 दिन में हल चलाकर बोए जाने वाले अनाज का अनुपात) ज्वार प्रदान की ।[30]

दूसरे प्रकार का प्रमुख कर 'शुल्क' होता था जो आयात निर्यात पर लिया जाता था जिसे चुंगी कर कहा जा सकता है । इन करों को वसूल करने के लिए मंडपिकाएँ होती थी । इन मंडपिकाओं द्वारा वसूल किए गए करों में से कुछ भाग धार्मिक स्थलों की व्यवस्था व रखरखाव हेतु दिया जाता था । नाडोल शासक अल्हणदेव ने भगवान महावीर की आराधना हेतु धूप दीप के लिए मंडपिका की आय में से प्रतिदिन 5 द्रम्म देने की घोषणा की ।[31] नाडलाई के ठाकुर राजदेव ने महावीर चैत्य के साधुओं के लिए बंजारों पर प्रति 20 पाइल भार वाले वृषभ पर 2 रुपये तथा धर्म के निमित्त गाड़ी के भार पर एक रुपया लेना निर्धारित किया ।[32] तीसरा प्रमुख कर 'दंड' था । जो अपराधियों से मुद्रा, द्रव्य, वस्तु,

पशु आदि के रूप में लिया जाता था। कुमारपाल के सामंत श्री अल्हणदेव ने प्रत्येक शिवरात्रि तथा प्रत्येक माह की दोनों अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को पशुवध निषेध की आज्ञा जारी की तथा इसका उल्लंघन करने पर साधारण नागरिक पर पांच द्रम्म तथा राज परिवार के सदस्यों से एक द्रम्म दंड लिए जाने की व्यवस्था की।[33] इनके अतिरिक्त छोटे–छोटे अन्य कई कर होते थे जिन्हें 'आभाव्य' कहा जाता था जिनमें स्कंधक (कंधे पर ले जाने वाले सामान पर कर), वेणी (बांस या भार), कोश्य (पिलाई), खल– भिक्षा (नाई,धोबी, कुम्हार आदि को दिए जाने वाला भाग) आदि हैं।[34]

न्याय व्यवस्था - तत्कालीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि न्याय व्यवस्था कठोर थी तथा चोरी, धोखाधड़ी आदि अपराधों के लिए भी कठोर दंड दिया जाता था। राजा खुले दरबार में न्याय करता था। ग्रामीण क्षेत्रों के मामले पंचों द्वारा स्थानीय स्तर पर निपटाए जाते थे। न्यायिक निर्णयों में नैतिकता व धर्म का प्रमुख स्थान होता था।[35]

रक्षा व्यवस्था- राज्य की आंतरिक शांति व्यवस्था तथा बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा के लिए रक्षा विभाग होता था जिसमें अनेक अधिकारी होते थे । इनमें दंडपाशिक, आरक्षिक, दांडिक और तलार प्रमुख होते थे। इसके अतिरिक्त गुप्तचर भी तैनात किए जाते थे जो चोर व डकैतों का ध्यान रखते थे, साथ ही सामान्य प्रजा के आचरण पर भी नजर रखते थे। जिससे राज्य में समुचित शांति व्यवस्था बनी रह सके।[36]

सैन्य प्रशासन व्यवस्था - सोलवीं सदी तक राजस्थान में युद्धों के द्वारा राज्य विस्तार को महत्व दिया जाता था इस हेतु सैन्य संगठन व सैन्य प्रशासन प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण क्षेत्र था। सैन्य विभाग को बलाधिकरण कहा जाता था। सेना में अश्वारोही, गजारोही तथा पदाति सैनिक होते थे। अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजपरिवार के लोग हाथियों पर बैठकर युद्ध करते थे तथा राज परिवार के लिए अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा अनिवार्य थी। सेना में प्रमुखत: सेनापति अथवा महादंडनायक, दंडनायक, बलाधिकृत, युद्धपति, पीलूपति (गज सेना का अधिकारी), अश्वपति, पायकापति (पदाति सेना का अधिकारी) आदि पद होते थे ।[37]

प्रांतीय शासन - राजस्थान से प्राप्त अभिलेखों से यहां की प्रांतीय प्रशासन की जानकारी प्राप्त होती है। राज्य का सर्वोच्च स्वामी भूचक्रवर्ती कहलाता था एवं इसके अधीन बड़े–बड़े सामंत होते थे। राज्य को विभिन्न मंडलों में विभाजित किया जाता था जिनके राजा मांडलिक कहलाते थे। मंडलों के अंतर्गत विषय होते थे जिनका अधिकारी विषपति कहलाता था। प्रतापगढ़ लेख के अनुसार विषयों को पथक और खेटक में विभाजित किया जाता था। ब्राह्मणों को अनुदान में दिए गए गांव अग्रहार कहलाते थे।[38] प्रतापगढ़ लेख 946 ई. में महादेव नामक प्रांतीय अधिकारी का उल्लेख है जो महेंद्र द्वितीय के अधीन थे। लेख में इनके द्वारा उज्जैनी में महाकाल की अर्चना के पश्चात गांव भेंट देने का वर्णन है। उसमें मंडपिका तथा अन्य संस्थाओं को अनुदान संबंधी व्यवस्थाओं के पालन का निर्देश दिया गया है जो उस समय के प्रांतीय प्रशासन पर प्रकाश डालता है।

स्थानीय स्वशासन - राजस्थान में ऐसे अनेक अभिलेख हैं जो स्थानीय स्वशासन की जानकारी प्रदान करते हैं । 1176 ई. के नाडोल लेख से ज्ञात होता है कि गांव की प्रशासनिक व्यवस्था पंचकुल नामक संस्था देखती थी जिसमें पांच या अधिक विशिष्ट व्यक्ति होते थे जो ग्रामीणों के विभिन्न मामलों को देखते थे। इन पंचकुलों में एक या दो कार्मिक राजकीय अधिकारी भी होते थे जो राज्य का प्रतिनिधित्व करते थे। बड़े गांवों–कस्बों और मंडियों की व्यवस्था हेतु मंडपिकाएँ होती थी। यह संस्थाएं राजकीय, स्थानीय तथा सार्वजनिक संस्थाओं के लिए कर वसूल करती थी और उसका उचित बंटवारा करती थी । 1141ई. के नाडोल के एक अन्य लेख से बड़े नगरों तथा ग्रामों में छोटी छोटी इकाइयों के विभाजन का ज्ञान होता है। प्रत्येक इकाई में प्रतिनिधियों की एक समिति होती थी जो गांव में अनुशासन बनाए रखने का

कार्य करती थी। समिति के प्रमुख का निर्णय सर्वमान्य होता था। एक प्रकार से 12 वीं सदी में राजस्थान में स्थानीय स्वशासन पूर्ण रूप से स्थापित था जो वर्तमान में प्रचलित स्वायत्तशासी संस्थाओं से किसी भी प्रकार से कम नहीं था।

सन्दर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग 22, श्लोक 29–39
2. तत्रेमे कुरुपांचाला: शाल्वामाद्रेयजांगला: । महाभारत, भीष्म पर्व, 9–39
3. मरूधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयो: परान् । भागवत पुराण, 1–10–35
4. अर्थशास्त्र
5. वही, 8,2
6. वि.स. 872 का सामंत पुत्री जयावली का बुचकला, जोधपुर से प्राप्त अभिलेख
7. पाली के सोमनाथ मंदिर से प्राप्त वि.सं. 1209 का अभिलेख
8. अथर्ववेद, 20.127.8
9. वाल्मीकि रामायण, 1.1.2–4
10. महाभारत, उद्योगपर्व, 29.27
11. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत–भाग 1, पृ.
12. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.
13. घटियाला अभिलेख 861 ईस्वी जोधपुर से 22 मील दूर उत्तर पश्चिम में स्थित
14. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत–भाग 1, पृ. 109
15. चित्तौडगढ़ बुरडा का रूपा देवी शिलालेख वि.सं. 1283
16. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.23
17. वही, पृ. 26
18. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास भाग 1, पृ.110
19. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.27
20. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास भाग 1, पृ.110
21. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.29
22. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ. 227
23. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत–भाग 1, पृ.47
24. पाली जिले के सेवाडी स्थित महावीर मंदिर का 1115 ई. का अभिलेख
25. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.30
26. वही
27. मनुस्मृति, 7.129
28. वि.सं. 1236 का जोधपुर, फलोदी अभिलेख
29. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, भाग 1, पृ.111
30. पाली जिले के महावीर मंदिर का 1115 ई. का सांडेराव पाषाण अभिलेख
31. व्यास, श्यामप्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.34

32. पाली, नाडलाई का लेख 1145 ई.
33. बाड़मेर के निकट किराडू का लेख 1152 ई.
34. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, भाग 1, पृ.112
35. वही
36. वही
37. वही
38. वही, पृ.113